

अकलंकदेव विरचित तत्त्वार्थवार्तिक का सम्पादन-कार्य : एक समीक्षा

• डॉ० फूलचन्द जैन प्रेमी, वाराणसी

सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मयकी गौरववृद्धिमें जहाँ जैन वाङ्मयका अप्रतिम योगदान है, वहीं इस महत्त्वपूर्ण अपूर्व विशाल जैन साहित्यके सृजनमें सहस्रों आचार्यों, विद्वानों आदि मनीषियोंकी दीर्घकालसे चली आ रही लम्बी परम्पराका जब स्मरण करते हैं, तो हमारा हृदय उनके प्रति कृतज्ञतासे गद्गद हो जाता है। उस समयकी विविध कठिन, प्रतिकूल परिस्थितियाँ, अनेक उपसर्गों, विपुल कष्टोंका सद्भाव और आज जैसी सुख-सुविधाओं, अनुकूलताओंका उस समय सर्वथा अभाव होनेके बावजूद इतने विशाल सृजनात्मक साहित्य-निर्माणके महान् उद्देश्यको देखते हैं तो अनुभव होता है कि उन्हें मात्र इस देशकी ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्वके कल्याणकी कितनी उत्कट अभिलाषाने उन्हें साहित्य-सृजनकी प्रेरणा दी होगी।

प्रस्तुत प्रसंगमें हम यहाँ उस लंबी परम्पराकी नहीं, अपितु बीसवीं शतीके मात्र उस महान् संपूतके कृतित्वकी चर्चा कर रहे हैं जिसने बुन्देलखण्डकी खुरई (सागर जिला) नगरीमें सन् १९११ में जन्म लेकर २० मई १९५९ तकके मात्र ४८ वर्षोंके जीवनमें जैनधर्म-दर्शन, न्याय तथा अन्यान्य विधाओंके ऐसे अनेक प्राचीन, दुरूह, दुर्लभ और क्लिष्ट ग्रन्थोंका सम्पादन करके उद्धार किया, जिनमें सम्पूर्ण भारतीय मनीषाके तथ्य समाहित हैं। ऐसे वे महामनीषी विद्यानगरी वाराणसीके स्व० डॉ० पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य, जिन्होंने सातवीं शतीके महान् जैन तार्किक आचार्य अकलंकदेवके प्रायः सम्पूर्ण वाङ्मय और उसपर लिखित व्याख्या साहित्यका वैज्ञानिक ढंगसे श्रेष्ठ सम्पादन-कार्य करके आचार्य अकलंकदेवके साहित्य उद्धारकर्ताके रूपमें अपनी विशेष पहचान बनाई है।

वस्तुतः इस बीसवीं शतीके आरम्भिक छह-सात दशकोंका समय ही ऐसा था, जबकि बहुमूल्य दुर्लभ जैन-साहित्यके पुनरुद्धारकी कठिन जुम्मेदारीका अलग-अलग क्षेत्रों एवं विषयोंमें बीड़ा उठाकर जैन विद्वानोंने अपनी अलग-अलग विशेष पहचान बनाई है। जैसे—आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तकवर्ती विरचित गोम्मटसारके अध्ययन-अध्यापन और स्वाध्यायकी परम्पराको पुनः लोकप्रिय बनानेका प्रमुख श्रेय गुरुणां गुरु पं० गोपालदास जी वरैयाको है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दीके अनेक शास्त्रोंका शास्त्र-भण्डारोंसे खोजबीन एवं उनका उचित मूल्यांकन करके इन भाषाओंके अनेक शास्त्रोंके उद्धारकर्ता एवं जैन साहित्यके इतिहास-लेखकके रूपमें पं० नाथूरामजी प्रेमीने सम्पूर्ण देशमें अपनी विशेष पहचान बनाई थी। वहीं आचार्य समन्तभद्र और उनके सम्पूर्ण अवदानको सामने लानेका प्रमुख श्रेय आचार्य पं० जुगलकिशोरजी मुस्तारको है। आचार्य कुन्दकुन्ददेवके बहुमूल्य चिन्तन और उनके अवदानपर कार्य करनेवाले इसी शतीके पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी, पूज्य कानजी स्वामी आदि अनेक विद्वानोंकी लंबी परम्परा है, किन्तु उन्हें मात्र धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टिसे ही नहीं, अपितु उनके बाद बहुआयामी व्यक्तित्व और कृतित्वका अनुसंधानपरक दृष्टिसे मूल्यांकन करनेके लिए सभीको प्रेरित करनेका प्रमुख श्रेय महामनीषी डॉ० ए० एन० उपाध्येको है। डॉ० हीरालाल-जी जैन एवं ए० एन० उपाध्ये द्वारा अनेक ग्रन्थोंका सम्पादन एवं उनकी अंग्रेजी भाषामें लिखित विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाओंके रूपमें इन दोनों विद्वानोंका योगदान विशेष प्रसिद्ध है।

आगमिक सिद्धान्त ग्रन्थोंमें मुख्यतः अनेक खण्डोंमें कसायपाहुडकी जयधवला टीका और षट्खण्डागम-की धवला टीका तथा आ० पूज्यपाद विरचित सर्वार्थसिद्धिका सुसम्पादन और अनुवाद जैसे महान् कार्योंमें

सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीकी पहचान इस क्षेत्रमें सर्वोपरि है। सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्दजी शास्त्रीने यद्यपि अनेक प्राचीन ग्रन्थोंका सम्पादन और अनुवाद कार्य किया है, किन्तु इन्हें जैन इतिहासकारके रूपमें विशेष सम्मान प्राप्त है। मुख्यतः जैन पुराण एवं काव्य साहित्यके अनुवादके रूपमें डॉ० पं० पन्नालालजीका महनीय योगदान है। नवीं शताब्दी के आचार्य विद्यानन्दके अधिकांश साहित्यके उद्धारकर्तके रूपमें डॉ० दरबारलालजी कोठिया तथा अपभ्रंशके महाकवि रङ्गू द्वारा सृजित साहित्यके उद्धारकर्तके रूपमें डॉ० राजारामजी जैनका महनीय योगदान है। इसी तरह और भी अनेक विद्वानोंने साहित्यकी अनेक विधाओंपर महत्वपूर्ण कार्य करके अपना विशेष स्थान बनाया है।

प्रथम शतीके आचार्य उमास्वामी विरचित तत्त्वार्थसूत्र एक ऐसा लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसपर व्याख्या लिखनेके कार्यको प्राचीन और अर्वाचीन आचार्यों और विद्वानोंने महान् गौरवपूर्णकार्य माना। वस्तुतः इस ग्रन्थमें जैनधर्मके चारों अनुयोगोंका सार समाहित है। इसीलिए अब तक इसपर शताधिक टीकग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। यहाँ तत्त्वार्थसूत्रपर लिखी गई सर्वार्थसिद्धि नामक व्याख्या-ग्रन्थके आधारपर आ० अकलंकदेव द्वारा लिखित “तत्त्वार्थवार्तिक” के सम्पादन-कार्यकी समीक्षा प्रस्तुत है—

इस तत्त्वार्थवार्तिक ग्रन्थके सम्पादक एवं हिन्दीसार करनेवाले पं० महेन्द्रकुमारजी हैं। वस्तुतः अकलंकदेवके तार्किक, जटिल-साहित्यका यदि पं० महेन्द्रकुमारजी उद्धार नहीं करते तो शायद पं० जीकी प्रतिभा रूपमें इस अनुपम लाभसे हम सभी वंचित रह जाते। यद्यपि आपने अकलंकके अतिरिक्त आचार्य प्रभाचन्द तथा आचार्य हरिभद्र आदि और भी आचार्य ग्रन्थोंका भी सम्पादन किया है। जैसा कि पं० महेन्द्रकुमारजीके बहुमूल्य कृतित्वसे स्पष्ट है कि उन्होंने अनेक मूल ग्रन्थोंका सम्पादन किया है, किन्तु आ० उमास्वामीके तत्त्वार्थसूत्रपर सातवीं शतीके महान् आचार्य अकलंकदेव द्वारा टीकारूपमें रचित “तत्त्वार्थवार्तिक” (तत्त्वार्थ राजवार्तिक) का पं० जीने मात्र सम्पादन ही नहीं किया, अपितु उसका हिन्दीसार लिखकर उस ग्रन्थका हार्द समझनेका मार्ग भी प्रशस्त किया।

तत्त्वार्थवार्तिक ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठ, काशीके अन्तर्गत मूर्तिदेवी जैनग्रन्थमालासे संस्कृत ग्रन्थांक १० एवं २०के क्रममें दो भागोंमें क्रमशः सन् १९५३ एवं १९५७में प्रकाशित हुए थे। द्वितीय संस्करण १९८२में प्रकाशित हुआ है। अभी कुछ वर्ष पूर्व सन् १९८७ में यह ग्रन्थ शब्दशः सम्पूर्ण अनुवाद सहित दो भागोंमें दुलीचन्द्र वाकलीवाल युनिवर्सल, एजेन्सीज, देरगाँव (आसाम) से प्रकाशित हुआ है। इसकी हिन्दी अनुवादिका हैं सुप्रसिद्ध विदुषी गणिनी आर्यिका सुपाश्वर्मती माताजी। पूज्य माताजीने यह अनुवाद पं० महेन्द्रकुमारजी द्वारा सम्पादित इस ग्रन्थके आधारपर किया। यद्यपि तत्त्वार्थवार्तिक पर पं० सदासुखदासजीके शिष्य पं० पन्नालालजी संघी, दूनीवालोंने वि० सं० १९२० के आसपास भाषा-वचनिका भी लिखी थी। सन् १९१५ में पं० गजाधरलालजीके सम्पादकत्वमें सनातन जैन ग्रन्थमाला, बनारससे तत्त्वार्थवार्तिक ग्रन्थ मूल-मात्र प्रकाशित हुआ था। उसके बाद पं० गजाधर लालजीके ही हिन्दी अनुवादको पं० मन्मथलाल जी न्यायालंकारके संशोधन एवं परिवर्धनके साथ भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशनी संस्था, कलकत्तासे हरीभाई देवकरण ग्रन्थमालाके क्रमांक ८वें पुष्पके रूपमें सन् १९२९ ई० में यह प्रकाशित हुआ। किन्तु इस ग्रन्थकी यह बहुत ही विशालकाय विस्तृत व्याख्या होने तथा वार्तिकके साथ टीका नहीं होनेसे स्वाध्यायियोंको कठिनाईका सामना करना पड़ता था। अतः पं० जी द्वारा संपादित यह ग्रन्थ हिन्दीसार सहित आ जानेसे समस्त पाठकोंको इसे समझनेमें सुविधा हुई। इस श्रमसाध्य उद्देश्यकी पूर्ति करते हुए, जिस ज्ञानसाधनाका कार्य पं० जीने किया है, वैसा शायद ही किसी दूसरेसे संभव होता ? पं० जीने ऐसे प्रामाणिक बनानेके लिए जयपुर,

ब्यावर, दिल्ली, वाराणसी, आरा, पुना, मूडबिद्री, श्रवणबेलगोल आदि शास्त्रभंडारोंकी हस्तलिखित और उपलब्ध मुद्रित प्रतियोंके आधारपर इसका सम्पादन किया है। जो विद्वान् इस प्रकारके दुर्लभ ग्रन्थोंका सम्पादन-कार्य स्वयं करते हैं, वे ही इतनी अधिक प्रतियोंके आधारपर मिलान करके सम्पादन-कार्यकी श्रमसाधना और कठिनाइयोंको समझ सकते हैं। अन्यथा ऐसे दृढ़ संकल्प, अटूट श्रद्धा एवं दृढ़ इच्छाशक्तिके इस महान् कार्यका वैसे मूल्यांकन सभीके वशकी बात नहीं होती।

पं० जीके सम्पादनकी यही विशेषता है कि ग्रन्थके उत्तम सम्पादन-कार्य हेतु उस ग्रन्थकी अनेक प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपिकी मूलप्रतियों, पूर्व प्रकाशित ग्रन्थोंका तथा उस ग्रन्थमें प्रतिपाद्य विषयके तुलनात्मक अध्ययन हेतु जैनतर विभिन्न ग्रन्थकारोंके ग्रन्थोंका वे भरपूर उपयोग कर लेते हैं, ताकि सम्पादन-कार्यमें कुछ कमी न रहे। इसलिए वे विस्तृत प्रस्तावनाके साथ ही अनेक परिशिष्टोंसे भी उसे सुसज्जित करते हैं जिसमें प्रमुख हैं—ग्रन्थगत सूत्रपाठ, उद्धरण, ग्रन्थमें आये ग्रन्थकार, ग्रन्थोंके नामोंकी सूची, शब्दानुक्रमणिका, भौगोलिक शब्द सूची, पारिभाषिक शब्दावली तथा सम्पादनमें सहायक ग्रंथोंका विवरण आदि।

प्रस्तुत तत्त्वार्थवार्तिक ग्रन्थके सम्पादन-कार्यको भी पं० जीने इन्हीं विशेषताओंसे सुसज्जित किया है। इसमें मात्र प्रस्तावनाकी कमी काफी महसूस होती है। किसी कारणवश पं० जीने इसकी प्रस्तावना इसमें नहीं दी। अन्यथा इस ग्रन्थके सम्पादन-कार्यके अनुभव, आचार्य अकलंक और उनके इस ग्रन्थकी विविध विशेषताओंको सम्पन्न करनेमें ग्रन्थ, विषय, शैली, रचयिताकी लेन व देन एवं उनका व्यक्तिगत परिचय, रचनाकाल आदि इतिहास उन्हें क्या कैसा प्रतीत हुआ? इन सभी बातोंका उन्हींके द्वारा लिखित विवरण ग्रन्थकी प्रस्तावनाके रूपमें पाठकोंके सामने आता तो उसका विशेष महत्त्व होता।

फिर भी पं० जी द्वारा प्रस्तुत इस ग्रन्थके अच्छे सम्पादन हेतु पूर्व प्रकाशित संस्करणोंके अतिरिक्त कुछ अन्य प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंके पाठसंकलन, संशोधन, तुलनात्मक टिप्पण, हिन्दीसार सूत्र-पाठ, समस्त दिगम्बर-श्वेताम्बर टीकाकारोंके पाठभेदों सहित सूत्रोंकी व तद्गत शब्दोंकी वर्णानुक्रमणियाँ, अवतरण-सूची, भौगोलिक शब्द सूची तथा वार्तिकके विशिष्ट शब्दोंकी सूची—ये इस संस्करणकी महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

तत्त्वार्थवार्तिकके अध्येता यह अच्छी तरह जानते हैं कि इस ग्रन्थका मूल आधार आचार्य पूज्यपाद विरचित सर्वार्थसिद्धि है। सर्वार्थसिद्धिकी वाक्य रचना, सूत्र आदि बड़े ही संतुलित और परिमित हैं। इसीलिए अपने पूर्ववर्ती और आगमानुकूल विषयका प्रतिपादन करनेवाले आचार्यके प्रायः सभी प्रमुख वाक्यों-को आचार्य अकलंकदेव ने अपने तत्त्वार्थवार्तिकमें वार्तिकके रूपमें समायोजित करके उनका विवेचन प्रस्तुत किया। प्रसंगानुसार नये-नये वार्तिकोंकी रचना भी की। इस प्रकार हम यही कह सकते हैं कि जिस प्रकार वृक्षमें बीज समाविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार सर्वार्थसिद्धि तत्त्वार्थवार्तिकमें समाविष्ट होते हुए भी दोनों ग्रन्थोंका अपना-अपना स्वतंत्र और मौलिक ग्रन्थके समान महत्त्व है। तत्त्वार्थवार्तिककी यह भी विशेषता है कि वार्तिकों ग्रन्थोंके नियमानुसार यह अध्याय आह्निक और वार्तिकोंसे युक्त है।

इस ग्रन्थके प्रथम खण्डके द्वितीय संस्करणमें सम्पादकीय प्रस्तावनाके अभावमें सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचंदजी शास्त्रीने अपनी प्रधानसम्पादकीय वक्तव्यमें लिखा है—“जहाँ भी दार्शनिक चर्चाका प्रसंग आया है वहाँ अकलंकदेवकी तार्किक सरणिके दर्शन होते हैं। इस तरह यह सैद्धान्तिक ग्रन्थ दर्शनशास्त्रका एक अपूर्व ग्रन्थ बन गया है। जैन सिद्धान्तोंके जिज्ञासु इस एक ही ग्रन्थके स्वाध्यायसे अनेक शास्त्रोंका रहस्य हृदयंगम कर सकते हैं। उन्हें इसमें ऐसी भी अनेक चर्चायें मिलेंगी जो अन्यत्र नहीं हैं।

इस ग्रन्थमें जगह-जगह आचार्य अकलंकदेवने विविध दर्शनोंके प्राचीन ग्रन्थोंके वाक्य उद्धृत किये हैं। पं० जीने उन सबकी अलग पहचान हेतु उतने अंशोंको इन्वरटेड कामा (“ ”) में रख दिया है तथा जितने उद्धरणोंके मूलग्रन्थोंकी जानकारी हुई, कोष्ठकमें उनके नाम और सन्दर्भ आदि संख्यायें दे दीं, जितने अज्ञात रहे, उनके कोष्ठक खाली छोड़ दिये गये, ताकि विद्वानोंको ज्ञात होनेपर वे वहाँ लिख सकें।

जिस तरह आ० अकलंकदेवकी शैली गूढ़ और शब्दार्थ गंभीर है, वे प्रतिपाद्य विषयको गंभीर और अर्थपूर्ण वाक्योंमें सहज विवेचन करते चलते हैं। इतना ही नहीं, उस विषयको पूरी तरहसे समझानेके लिए सम्भाव्य प्रश्नोंको पूर्वपक्षके रूपमें प्रस्तुत करके उत्तरपक्षके रूपमें उनका समाधान करते हुए चलते हैं, उसी प्रकार पं० महेन्द्रकुमारजीकी भी हिन्दीसारकी शैली भी अर्थगंभीर है। यद्यपि इस ग्रन्थके हिन्दीसारको मूलग्रन्थके अंतमें इकट्ठा प्रस्तुत किया है। किन्तु मूलग्रन्थकारका ऐसा कोई मुख्य विषय या स्थलका हार्द अवशिष्ट नहीं है, जिसे पं० जी ने स्पष्ट रूपमें प्रस्तुत न किया हो। सम्बद्ध कुछ-कुछ वार्तिकों और उसमें प्रस्तुत सुमम्बद्ध विषयको सम्पादकने एक साथ हिन्दीसारके रूपमें किया है। उदाहरणस्वरूप ग्रन्थके आरम्भमें मंगलाचरणका अर्थ करनेके बाद पं० जीने प्रथम अध्यायके आरम्भिक प्रथम एवं द्वितीय वार्तिकमें प्रतिपाद्य विषयको सार रूपमें एक साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया है—“उपयोगस्वरूप तथा श्रेयोमार्गकी प्राप्तिके पात्रभूत आत्मद्रव्यको ही मोक्षमार्गके जाननेकी इच्छा होती है। जैसे आरोग्यलाभ करनेवाले चिकित्साके योग्य रोगीके रहनेपर ही चिकित्सामार्गकी खोज की जाती है, उसी प्रकार आत्मद्रव्यकी प्रसिद्धि होनेपर मोक्षमार्गके अन्वेषणका औचित्य सिद्ध होता है।”

इसके बाद मात्र तीसरे वार्तिकका अर्थ बतलाते हुए लिखा कि—“संसारी आत्माके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पुरुषार्थोंमें मोक्ष ही अन्तिम और प्रधानभूत पुरुषार्थ है। अतः उसकी प्राप्तिके लिए मोक्ष मार्गका उपदेश करना ही चाहिए।” इस वार्तिकके हिन्दीसारके बाद चौथेसे लेकर आठवें वार्तिक तकके विषयको एक साथ प्रश्न (पूर्वपक्ष) और उसके समाधान (उत्तरपक्ष) के रूपमें अर्थ लिखा। प्रथम अध्याय-के प्रथमसूत्रके ३९ से ४६ तकके ७ वार्तिकोंका अर्थ एक साथ ही नहीं अपितु उस सम्पूर्ण विषयको सुसम्बद्ध करते हुए “मिथ्याज्ञानसे बंध और सम्यग्ज्ञानसे मोक्ष” माननेवाले सांख्य, वैशेषिक, नैयायिक, बौद्ध आदि जैनतर दर्शनोंकी एतद् विषयक मान्यताओंका अलग-अलग किन्तु सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत करते हुए रत्नत्रय-को मोक्षमार्ग प्रतिपादित करते हुए जैनधर्म सम्बन्धी मान्यताओंका औचित्य सिद्ध किया है। इसी प्रकारकी शैलीमें पं० जीने सम्पूर्ण ग्रन्थका हिन्दीसार प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत हिन्दीसारके इन अंशोंको उदाहरणके रूपमें यहाँ प्रस्तुत करनेका प्रयोजन पं० जीकी शैली बताना है। आपने मूलग्रन्थकारके सभी अंश और भावोंको किस तरह अपनी सही हुए भाषा, चुने हुए शब्दों और प्रभावक शैलीमें प्रस्तुत किया है कि देखते ही बनता है। वस्तुतः किसी भी दार्शनिक या तात्त्विक ग्रन्थका किसी भी भाषामें ग्रन्थकारके सम्पूर्ण भावोंको अनुवादके माध्यमसे प्रस्तुत करना जितना कठिन होता है, उसका सारांश प्रस्तुत करना उससे भी अधिक कठिन एवं चुनौतीपूर्ण कार्य होता है। फिर भी पं० जीका हिन्दीसार रूप अनुवाद तथा इस ग्रन्थका श्रेष्ठ सम्पादन रूप यह साहसपूर्ण कार्य उनकी विलक्षण प्रतिभाका परिचायक है।